इकाई 4. भवभूति का जीवन परिचय एवं कृतियाँ

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के इतिहास के अध्ययन से सम्बन्धित खण्ड दो की यह चौथी इकाई है। भवभूति एक उत्कृष्ट कोटि के विद्वान थे ,उन्हें उनकी विद्वता पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी।उनकी अपनी विद्वता पर गर्व भी था जो भाषा पर इनके पूर्ण अधिकार को देखते हुए स्वाभाविक एवं सात्विक प्रतीत होता है।

महाकवि भवभूति एक महान् कवि थे उनका हृदय अत्यन्त निर्मल था वह सात्विक प्रेम के पक्षपाती थे। उनमें बाहरी कारणों की कोई अपेक्षा नही थी, उनका हृदय अत्यन्त गंभीर था वह आन्तरिक कारणों में विश्वास करते थे।

महाकवि भवभूति मानव मन को पहचानने में अत्यन्त पारखी थे। इसीलिए उन्होंने भगवान राम की लीलाओं का वर्णन किया है। अत: इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि भवभूति का व्यक्तित्व किस प्रकार था और उनकी रचनाशैली क्या थी।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भवभूति के व्यक्तित्व एवं कृतियों का ज्ञान करेंगे।
- महाकवि भवभूति के व्यक्तित्व के विषय में ज्ञान करेंगे।
- महाकवि भवभूति के निवास के विषय में बताएंगे।
- महाकवि भवभूति के समय का उल्लेख करेंगे।
- महाकवि भवभूति की कृतियों के विषय विस्तार से से बताएंगे।

4.3 भवभूति का जीवन परिचय एवं उनकी कृतियाँ

भारतीय मत (सिद्धान्त मत) वेदो में ही नाटक के बीच उपलब्ध होते है। सभी नाटकीय तत्वों को वेद में देखा जा सकता है। जैसे-ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में यम यमी संवाद, उर्वशी पुरूरवा संवाद, सरमा पाणी संवाद, सामवेद में संगीततत्व की सत्ता, यजुर्वेद में धार्मिक कृत्यों के अवसर पर नृत्य विधान आदि। इससे नाटक तत्वों की वेदमूलकता स्पष्टतया सिद्ध होती है। रामायण और महाभारत रंगशाला नट, कुशीलव आदि शब्दो के प्रयोग से भारतीय नाटयकला की प्राचीनता द्योतित होती है। पाणिनी के पाराषर्यशिलाभ्यां भिक्षु नट सुत्रयोः ( ) तथा कर्मन्द कुशाश्वादिनिः ( ) सूत्र से सिद्ध होता है कि पाणिनी से पहले ही शिलाली और कुशाश्व दो आचार्य हो चुके थे, जिन्होने नटसूत्र (नाटयशास्त्र) का प्रवचन किया था अर्थात् भारतीय नाटयकला पूर्ण विकसित हो चुकी थी। पतन्जलि ने महाभारत ( ) में ‘कंसवध’ और ‘बलिबन्ध’ नामक दो नाटको का स्पष्ट

उल्लेख किया है। हरिवंश में भी रामायण की कथा के अभिनय का उल्लेख देखा जाता है। बुद्धदेव ने अपने अनुशासन में नाटयाभिनय न करने का उपदेश दिया है। मगधराज दिम्बराज ने नागराज का सम्मान करने के लिए नाटय का अभिनय कराया था, ऐसा ऐतिहासिक दृष्टान्तों से प्रतीत होता है। 'नाटयशास्त्र' में भरतमुनि ने नाटक के आविभार्व और उसके उद्देश्य के विषय में एक अत्यन्त मनोरंजक कथा का उल्लेख किया है। वह इस प्रकार है- वैवस्वत् मनु के दूसरे युग (त्रेता) में लोग बहुत दुःखी हुए। इस पर इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने जाकर ब्रह्मा से प्रार्थना की कि आप मनोविनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिए जिससे सबका मनोरंजन हो सके। इस पर ब्रह्माजी ने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से नाट्य (अभिनय) अथा अथर्ववेद से रस लेकर नाटकरूप 'पंचमवेद' की रचना की।

नाटक का प्रयोजन- नाटक का प्रयोजन बहुत ही महत्वपूर्ण है। आचार्य भरत ने नाटक को 'सार्ववर्णिक वेद' कहा है। वेद में स्त्री और शूद्रों का अधिकार नही है। किन्तु नाटक में सबका अधिकार है। कवि कालिदास ने विभिन्न रूचि वाले मनुष्यों के लिए नाटक को मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन कहा है। आचार्य भरत ने नाटक का उद्देश्य बतलाते हुए कहा है- नाटक उत्तम, मध्यम और अधम पात्रों के क्रम का प्रदर्शन कर अत्यन्त प्रभावपूर्ण हितोपदेश करता है। नाटक मनुष्यों में धैर्य, क्रीडा और सुख आदि को उत्पन्न करता है। दुःखार्त, श्रमार्त, शोकार्त, तपस्वी आदि सभी जनो के लिए नाटक उचित अवसर पर विश्रामजनक (मनोरंजन का हेतु) होता है। (नाटयशास्त्र,) अग्नि पुराण का वचन है- नाटय (नाटक) एक ऐसी वस्तु है जिससे धर्म, अर्थ और काम तीनो पुरूषार्थ की प्राप्ति होती है। **त्रिवर्ग साधनं नाटयम............'। (अग्नि पुराण,)** इस विवेचन से सिद्ध होता है कि नाटक जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

साहित्य में नाटक का स्थान- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्य में नाटक का स्थान अत्यन्त मनोरंजक एवं नितान्त जीवनोपयोगी है। अतः यह उक्ति अक्षरशः सत्य है-'काव्येषु नाटक रम्यम्' तथा 'नाटकान्र्त कवित्वम्'। अर्थात् काव्यों में नाटक मनोहर होता है और नाटक काव्य के उत्कर्ष की चरम सीमा है। यों तो कुशल साहित्कार किसी भी क्षेत्र में अपने असाधारण कला का सफलता के साथ प्रदर्शन कर सकता है। इसके विपरीत नाटक के दृश्य प्रधान होने के कारण वह अतिशय रमणीय तो होता ही है, उसका प्रभाव भी चिरस्थायी होता है। इस प्रकार कवि अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल होता है। महाकवि कालिदास की विश्वविश्रुतता में उनके अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का ही अपेक्षाकृत अधिक हाथ है तथा महाकवि भवभूति को उनके अपने 'उत्तररामचरित' नाटक ने ही विश्व में अमरता प्रदान की है। इस प्रकार साहित्य में नाटक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

महाकवि भवभूति

उत्तररामचरित जैसे महत्वपूर्ण नाटक के रचियता के नाम के सम्बन्ध में इनके द्वारा लिखी गयी नाटक पुष्पिकाओं के अतिरिक्त कोई अन्य दृढ़तर प्रमाण न होने से विद्वानो में मतभेद है। भवभूति ने अपने नाटको की प्रस्तावना में **'श्रीकण्ठपदलान्छनः भवभूतिर्नाम'** इस प्रकार

अपने नाम का परिचय दिया है। इससे स्पष्ट है कि कवि का वास्तविक नाम भवभूति था और 'श्री कण्ठ' इस उपाधि से वे बाद में अलंकृत किये गये। भवभूतिर्नाम इसमें नाम शब्द प्रसिद्धिद्योतक अव्यव है, इसलिए अधिकतर टीकाकारो ने भवभूति प्रचलित नाम तथा श्रीकण्ठ पैतृक नाम माना है। जैसे-श्रीकण्ठ इति................ पैतृकं नामधेयमिदम्। भवभूतिरिति प्रसिद्धनामवान्। (वीरराघव) इन टीकाकारो ने इस विषय में अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक हेतु भी कल्पित कर लिए है, जैसे-1 साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः इत्यादि कविरचित श्लोक से प्रसन्न होकर किसी राजा ने इन्हे भवभूति इस उपाधि से सम्मानित किया गया। 2. गिरिजा की स्तुति में कवि द्वारा रचे गये गिरिजायाः कुचौ वन्दे भवभूतिसिताननौ, इस श्लोक के कारण भवभूति नाम से कवि प्रसिद्ध हो गया। वीरराघव तथा घनश्याम ने तो इस शब्द की व्युत्पत्ति की आधारशिला पर एक नयी कल्पना का भी प्रतिष्ठापन किया है-अस्मै कवये ईश्वर एव भिक्षुरूपेणागत्य भूतिं दत्तवानिति वदन्ति। एवं च भवात् भगवती भूतिर्यस्येति भवभूतिरित्यन्वर्थ इत्याहुः। (वीरराघव) भूतिः सम्पत् यस्य ईश्वरेणैव जातु द्विजरूपेण........... दत्ता तदाप्रभृति भवभूतिरिति प्रसिद्धो जातः। (घनश्याम)। अर्थात् भव (शिव) ने भिक्षुक रूप में आकर इन्हे भूति (सम्पत्ति) प्रदान की, अतः इनका नाम भवभूति पड़ गया। कुछ लोग इनके पिता 'नीलकण्ठ' के नाम के अनुकरण पर इनका वास्तविक नाम 'श्रीकण्ठ' था और 'भवभूति' उपनाम था- ऐसा भी कहते है, किन्तु यह युक्ति सर्वथा मान्य नही हो सकती, क्योंकि इनके वंश में अनुप्रासात्मक नामकरण की परिपाटी सिद्ध नही होती। इनके पितामह का नाम भट्टगोपाल था, किन्तु इससे मिलता-जुलता इनके पिता का नाम (नीलकण्ठ) नही है। उपर्युक्त अन्य युक्तियॉ भी इसलिए मान्य नही हो सकती है, क्योंकि श्रीकण्ठपदलान्छनः'-इसमें श्रीकण्ठपदमेव लान्छनं (लाछि लक्षणे धातु) लक्षणं यस्य सः' इस विग्रह से से 'श्रीकण्ठ' यह लक्षण ही प्रतीत होता है। अतएव कवि का नाम भवभूति ही है और 'श्रीकण्ठ' इनका लक्षण (विशेषण) है। हॉ, 'भवभूति' नाम इनके माता-पिता ने सम्भवतः इसलिए रखा होगा कि उन्हे भव (शंकर) की कृपा के परिणामस्वरूप ऐसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई होगी- ऐसी सम्भावना करना किसी हद तक ठीक कहा जा सकता है।

वंश- इनके नाटको की प्रस्तावना के आधार पर ही यह भी ज्ञात है कि दक्षिण में विदर्भ (बरार) के अन्तर्गत पद्मपुर नगर में कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयशाखा वाले, काश्यप गोत्रीय पड.क्तिपावन पंचाग्निपूजक और उदुम्बर उपाधि वाले ब्राह्मण लोग रहते थे। उन्ही की कुल में कोई वाजपेय यज्ञ करने वाले महाकवि हुए। उन्ही की वंश परा परम्परा में पॉचवी पीढ़ी में भवभूति का जन्म हुआ। भवभूति के पितामह का नाम भट्टगोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जतुकर्णी (अथवा जातुकर्णी) था इनके गुरू का नाम ज्ञाननिधि था।

निवास स्थान- टीकाकार घनश्याम ने भवभूति के द्वारा प्रयुक्त अनेक द्राविड़ प्रयोगो के आधार पर भवभूति का जन्म स्थान द्राविड़ देश में माना है। मालतीमाधव के कुछ पाठो में तथा भण्डारकरः द्वारा सम्पादित पाठ में 'दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरं नाम नगरम्-ऐसा उल्लेख है। अतः डा0 मिराशी का मत है कि विदर्भ देश के अन्तर्गत पद्मपुर नगर में भवभूति का जन्म हुआ

था। एम0 जी0 लेले, जगद्धर के अनुसार पद्मपुर और पद्मावती को एक मानकर ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत नरवाड़ से उत्तर- पूर्व एक गॉव पवाया या 'पोलावाया' को भवभूति का जन्मस्थान मानते है। बहुत से आधुनिक विद्वानो का कहना है कि भवभूति ने अपनी रचनाओं में गोदावरी तथा विन्ध्याचल का हृदयग्राही वर्णन किया है, इसलिए बहुत संभव है कि इन्ही दोनो के आस-पास इनका जन्मस्थान रहा हो। इस प्रकार भवभूति का जन्मस्थान आज भी अनिर्णीत ही है।

भवभूति का समय-उत्तररामचरित के प्रथम अंक के सत्ताइसवें श्लोक का चतुर्थ चरण है- अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।' इसके सम्बन्ध में किंवन्दती है कि भवभूति ने पहले इसका पाठ '...........रात्रिरेव व्यरंसीत्'-ऐसा रखा था, बाद में कालिदास को यह पद्य दिखलाये जाने पर भवभूति ने कालिदास के सुझाव पर उसके स्थान में 'रात्रिरेव व्यरंसीत्' ऐसा संशोधन कर दिया। इस किंवन्दती से ऐसा मालुम होता है कि भवभूति कालिदास के समय में ही हुए थे, किन्तु इस तथ्य की पुष्टि इतिहास से नही होती है। अतः इसे वस्तुतः किंवन्दती ही मानना चाहिए। इसी प्रकार बल्लाल ने अपने 'भोजप्रबन्ध' में धारानगरी के महाराज भोज के दरबार में कालिदास, भवभूति, बाण और मयूर आदि कवियो को एक साथ लाकर बिठा दिया है। इतना ही नही, उन्होने एक कथा भी गढ़ कर इस प्रकार लिखी है-राजाभोज द्वारा दिये गये विषय पर कालिदास और भवभूति दोनो ने अपनी-अपनी काव्य रचना की। उनके काव्यों की परीक्षा भगवती भुवनेश्वरी के मन्दिर में की गयी। कालिदास की रचना उत्कृष्टतर होने को ही थी कि भगवती भुवनेश्वरी ने अपनी कृपा से भवभूति की रचना को ही उत्कृष्टतर प्रमाणित कर दिया। इस आधार पर भी भवभूति और कालिदास को समकालीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है, किन्तु भोज-प्रबन्ध में विभिन्न काल के कवियों का जमघट तथा उनसे सम्बन्धित कथाएं सभी कुछ इतिहास से मेल न खाने के कारण कदापि न मान्य है। 'भोज-प्रबन्ध' एक मनोरंजक ग्रन्थ हो सकता है, एतिहासिक ग्रन्थ नही। बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में अनेक पूर्ववर्ती कवियों यथा-भास, कालिदास, भट्टारहरिचन्द्र आदि का स्मरण किया है, किन्तु भवभूति की चर्चा नही की है। अतः स्पष्ट है कि बाणभट्ट के बाद ही भवभूति हुए। बाण की शैली से भवभूति की रचनाएं प्रभावित भी है। बाणभट्ट का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्धं है। अतः भवभूति को इसके बाद होना चाहिए। यह भवभूति के समय की पूर्वसीमा है। (क) आचार्य मम्मट (ख) महिमभट्ट (ग) तथा आचार्य क्षेमेन्द्र (घ) ने अपने-अपने ग्रन्थ क्रमश: काव्यप्रकाश, व्यक्तिविवेक तथा औचित्य विचारचर्चा में भवभूति के अनेक उद्धरण दिये है। धनञ्जय ने दशरूपक में उत्तररामचरित के अनेकानेक उद्धरण दिये है। अत: भवभूति 750 ई0 से परवर्ती नहीं हो सकते हैं।

(ग) राजशेखर ने बालरामायण में अपने को भवभूति का अवतार माना है। (द्रष्टव्य, बालरामायण) राजशेखर का स्थितकाल 210 से 315 ई.माना जाता है। अतः भवभूति को इससे पूर्व होना चाहिए। (घ) वामन ने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति ग्रन्थ में भवभूति के इयं गेहे लक्ष्मीः- इत्यादि पद्य (उत्तर. 1/38) को उद्धृत किया है। वामन का समय 8वीं शती ई. का उत्तरार्द्ध और 9वीं का पूर्वार्द्ध माना जाता है। अतः भवभूति को इनके पूर्व का होना चाहिए। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार भवभूति कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रित कवि थे तथा गउडवहो

प्राकृत काव्य के रचयिता वाक्पतिराज भी इन्ही यशोवर्मा के आश्रित थे (राजत.) यशोवर्मा को कश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त किया था। ललितादित्य का समय कनिंघम के अनुसार ई. तक है । वाक्पतिराज ने गउडवहो (साख्यक पद्य) में भवभूति की प्रशंसा की है और उस सूर्यग्रहण का निर्देश भी किया है, जिसका समय जैकोबी के अनुसार 14 अगस्त 733 ई. निर्धारित किया गया है। अत: सिद्ध होता है कि वाक्पतिराज 733 ई0 में यशोवर्मा का आश्रित कवि था और उस समय तक भवभूति की कीर्ति फैल चुकी थी और वह उसका ज्येष्ठ समकालीन आश्रित कवि था । अतः वाक्पतिराज का समय ईसा की आठवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है और भवभूति उनसे कुछ पूर्व अर्थात् सातवीं शताब्दी के अन्त में हुए होंगे अथवा यह भी सम्भव है कि जिस समय भवभूति अपनी प्रतिज्ञा के चरम उत्कर्षपर हों, उस समय तक वाक्पतिराज कवि के रूप में प्रसिद्धि न पा सके हों । इस प्रकार भवभूति के स्थितिकाल की उत्तरसीमा सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध या आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित है । अतः भवभूति का स्थितिकाल वाणभट्ट (सातवीं शताब्दी का' पूर्वार्द्ध) के बाद से लेकर आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच सुनिश्चित है।

भवभूति और मीमांसक उम्बेक की अभिन्नता

कुछ दिन पूर्व श्रीशंकर पाण्डुरंग को मालतीमाधव की एक हस्तलिपि प्राप्त हुई थी, जिसके तृतीय अंक की पुस्तिका में लिपिकार ने उसके रचियता के विषय में इति श्री भट्ट कुमारिलशिष्य कृते मालतीमाधवे तृतीयोऽक और षष्ठ अंक की पुष्पिका में इति श्री कुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभव-श्रीमदुम्बेकाचार्यविरचिते मालतीमाधवे षष्ठोऽकः- ऐसा लिखा है । इससे यह समस्या खडी हो जाती है कि क्या भवभूति और उम्बेक एक ही थे ? उम्बेकाचार्य मीमांसा के बहुत बडे विद्वान् थे और उन्होने कुमारिल के श्लोक वार्तिक पर टीका लिखी है । उस टीका का उन्होने वे नाम केचिदिह् ....' से प्रारम्भ किया है, जो मालतीमाधव में भी है । इससे भवभूति और उम्बेक की अभिन्नता की पुष्टि होती है। प्रत्यग्रूप भगवान ने चित्सुखाचार्य की तत्वदीपिका की नयन प्रसादिनी टीका में उम्बेक का कई बार उल्लेख किया है और उनको भवभूति से अभिन्न बतलाया है । श्री हर्ष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'खण्डनखण्डखाद्य' पर आनन्द पूर्ण ने विद्यासागरी नामक टीका लिखी है, उसमें श्लोकवार्तिकसे दो श्लोक उद्वत किये गये है । टीकाकार ने बतलाया है कि उबैक (उम्बेक) ने इन श्लोको की टीका की है । हरिचन्द्र सूरी के 'षड्दर्शन-समुच्चय' की टीका में गुणरत्न नामक जैन लेखक (ई.) ने उम्बेक की कारिका (अर्थात श्लोकवातिंत) का अच्छा ज्ञाता बतलाया है । (उम्बेकः कारिकां वेत्त.............')इस विवेचन से सिद्ध होता है कि भवभूति का ही दुसरा नाम उम्बेक था । साहित्य में वे 'भवभूति' नाम से और मीमांसा में उम्बेक नाम से प्रसिद्ध हुए।

'श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाऽगिंराः।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरूः।।

इस गुरू परिचय विषयक श्लोक के आधार पर कुछ लोग भवभूति और उम्बेकाचार्य की अभिन्नता स्वीकार नही करते, क्योंकि भवभूति ने अपने गुरू का नाम स्पष्ट रूप से इस श्लोक में ज्ञाननिधि बतलाया है, किन्तु बहुत सम्भव है कि उक्त श्लोक में कुमारिलभट्ट का नामान्तरण अथवा उपाधि ज्ञाननिधि हो । 'परमहंसानां श्रेष्ठः ' इस विशेषण ज्ञाननिधि उत्तरमीमांसा के आचार्य सि़द्ध होते है । जब भी कुमारिलभट्ट पूर्वमीमांसा के आचार्य थे । अतः ज्ञाननिधि और कुमारिलभट्ट की अभिन्नता नही बनती है-इसका समाधान यह है कि कुमारिलभट्ट उत्तरमीमांसा के भी विद्वान् थे, जिसकी पुष्टि श्लोकवार्तिकस्थ उन्हीं की इस उक्ति से होती है-

'इत्याह नास्तिक्रूनिराकरिशणुरात्मास्तितां भाष्यकृदत्र युक्त्या।

हढत्वमेतद्विशयष्च षोधः प्रयाति वेदान्तनिशेवणेन।।

अथवा भवभूति उम्बेक के उत्तरमीमांसा के गुरू ज्ञाननिधि रहे होंगे और पूर्वमीमांसा के गुरू कुमारिलभट्ट। भिन्न-भिन्न शास्त्रों के अध्ययन के लिए भिन्न गुरू करना अयुक्त तो है नही-नैकः सर्वं विजानाति' । उत्तररामचरित में पदवाक्यप्रमाणज्ञः' इस विशेषण पद से तथा 'चतुर्थ अंक' के दाण्डायन-सौधातकि संवाद 'समांसो मधुपर्कः' से भी उनके मीमांसाकत्व पर प्रकाश पडता है । अतः भवभूति और उम्बेकाचार्य को एक ही व्यक्ति मानना अयुक्त नही होगा । भवभूति की बहुज्ञता-भवभूति की विद्वता अपनी पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी । समस्त शास्त्रो में उनकी समान अप्रतिहत गति थी । वाणी इन्हे ब्रह्मा के रूप में ही मानकर वशवर्तिनी होकर इनका अनुसरण करती थी । यों तो अपने को वे 'पदवाक्यप्रमाणज्ञः' (व्याकरण-मीमांसा-न्यायशास्त्रवेत्ता) विशेषण से अपनी सीमित विद्वता का परिचय देते है, किन्तु उनकी कृतियो के अनेक पद्यो से यह पता चलता है कि वेद, उपनिषद् , वेदान्त, व्याकरण, योग, सांख्य, तन्त्र, जातक, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, राजनीति, कामसूत्र, नाट्यशास्त्र आदि पर उनका पूर्ण अधिकार था। जैसे-उत्तर. से वेद-विषयक महा. उत्तर. । पन्थानो देपवयानाः', असुर्या नाम ते लोकाः' आदि से उपनिषद् विषयक, उत्तर. के विवर्न आदि से वेदान्त विषयक, महा. तृ. अं., मा. मा. वें अंक से योग विषयक मा. मा. अतिबोधिसत्त्वैः से जातक-विषयक, उत्तर. अंक में प्रचीयमानसत्त्वप्रकाश:' से सांख्य विषयक, उत्तर. चौथे अंक के विष्कम्भक से धर्मशास्त्र-विषयक, निगृहीतोऽसि' इत्यादि प्रयोगो से न्याय-विषयक, मा. मा. तथा सप्तम अंक गत एक उद्धरण से कामसूत्र विषयक, महा. अंक के अनेक स्थलों से तथा मालती माधव के 'कामन्दकी' नामकरण से राजनीति-विषयक, उत्तर. प्रथम अंक में अर्थवाद के प्रयोग से मीसांसा-विषयक, उत्तर. में भरत के लिए 'तौर्यत्रिकसूत्रधार' के प्रयोग से तथा मालती माधव से नाट्यशास्त्र विषयक उनकी ज्ञानराशि का सम्यक् परिचय प्राप्त होता है ।

भवभूति की रचनाएं और उनका संक्षिप्त परिचय

भवभूति की तीन प्रसिद्ध रचनाएं इस समय उपलब्ध है- 1 मालतीमाधव 2. महावीरचरित (अथवा वीरचरित) 3. उत्तररामचरित । ये तीनों कृतियां नाटक है । इन रचनाओं के पौर्वापर्य-क्रम के विषय में विद्वानों में बडा मतभेद है । कुछ लोग यह निर्णय देते है कि इनका रचना क्रम

इस प्रकार है-महावीरचरित, मालतीमाधव, तदन्तर उत्तररामचरित उनकी दृष्टि में ऐसा क्रम निर्धारित करने में मालतीमाधव का यह श्लोक रहा है-

ये नाम केचिदिह इतिप्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यने हि मम कोऽपि समानधर्मा
कालो महान निरवधिर्विपुला च पृथिवी ।।

उनका तर्क है कि उत्तररामचरित अपने में एक अत्यन्त प्रौढ़ रचना है । कवि की यह अन्तिम रचना है, इसमें किसी प्रकार की विपृतिपत्ति नही है। मालतीमाधव में उक्त श्लोक के द्वारा कवि ने अपने आलोचकों के प्रति जो आक्रोश व्यक्त किया है, उससे प्रतीत होता है कि महावीरचरित की रचना प्रथम हुई। आलोचकों द्वारा उसकी अवज्ञा होने पर कवि ने मालतीमाधव की रचना की और उससे उक्त श्लोक में कवि का अवज्ञाजनित आक्रोश फूट पड़ा है। इससे मेरी मन्द बुद्धि में यह आती है कि इन तीनो रचनाओं का क्रम इस प्रकार है-मालतीमाधव, महावीरचरित और अन्त में उत्तररामचरित। मालतीमाधव में कवि द्वारा व्यक्त अवज्ञाजनित आक्रोश के मूल में कवि की उन रचनाओं की अवज्ञा है, जो मालतीमाधव के पूर्व की गयी थीं और जो तत्कालीन आलोचकों की अवज्ञा से प्रचार-प्रसार न पाकर कुछ समय में अपनी सत्ता खो बेठी, जिनका कुछ अवशेष कल्हण की सूक्तिमुक्तावली तथा अन्य सूक्ति-ग्रन्थों में यत्र-तत्र विकीर्ण मिलता है। राम के पूर्वचरित रूप महावीरचरित और उत्तररामचरित की रचना में अधिक समय का व्यवधान ठीक नही लगता। यह भी अयथार्थ सा लगता है कि एक बार रामचरित की ओर उन्मुख होकर कवि 'महावीरचरित' की रचना करे, फिर उससे मुँह मोड़कर मालतीमाधव जैसी रचना में प्रवृत्त और पुनः उधर से मुड़कर रामचरित (उत्तर) की और प्रवृत्त हों । तत्कालीन आलोचकों द्वारा 'महावीरचरित' की अवज्ञा हुई, यह बात भी विश्वनीय नही लगती, क्योंकि तब तो इस अवज्ञेय ग्रन्थ को परावर्त्ती लक्षणग्रन्थकारों-आचार्य विश्वनाथ, महाराज भोज आदि द्वारा सम्मान मिलना सन्दिग्ध हो जाता है, तब भी उनके ग्रन्थों में 'महावीरचरित' के उद्धरण आदरपूर्वक स्वीकार किये गये है। तथाकथित आलोचकों द्वारा अवज्ञात होने पर तो प्रचार-प्रसार के अभाव में इसका लुप्त-प्राय हो जाना स्वाभाविक होता। वस्तुतः मालतीमाधव, महावीरचरित और उत्तररामचरित ये तीनों कवि के वह ग्रन्थरत्न है जिनकी आभा सतत समान रूप से देदीप्यमान रही है।

मालतीमाधव- यह दस अंको का प्रकरण है। इसमें विदर्भ के राजमन्त्री देवराज के पुत्र माधव और पद्मावती के राजमन्त्री भूरिवसुकी कन्या मालती का विवाह अत्यन्त कौतुहलवर्द्धक और मनोरंजक ढंग से वर्णित है। सम्पूर्ण कथा काल्पनिक है, जो प्रकरण के लिए आवश्यक है। इसमें श्रृंगार प्रधान रस है, जो साहित्यशास्त्र के अनुसार प्रायः प्रकरण के लिए आवश्यक माना जाता है । इस प्रकरण में स्थान-स्थान पर भवभूति का हृदयावर्जक वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है । बृहत्कथामन्जरी और कथासरित्सागर में तीन ऐसी कहानियॅा मिलती है, जिनमें प्रेमी और प्रेमिका का चुपके से भाग निकलना, लुक-छिपकर विवाह करना, प्रेमिका का संकट मे पड जाना तथा

उसका कौतुहलपूर्ण ढंग से उद्धार होना आदि वर्णित है। मालतीमाधव की कथा को देखते हुए ऐसा लगता है कि भवभूति को उन्ही तीन कहानियों से अवश्य प्रेरणा मिली होगी।

महावीरचरित- यह सात अंको का नाटक है। इसमें रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक तक की घटनाओं अर्थात् राम के जीवन के पूर्वार्द्ध का वर्णन है। इस नाटक के नायक रामचन्द्र है। नाटक की मर्यादा को ध्यान में रखकर कवि ने कथानक में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है, जिससे नाटकीय स्वाभाविकता भी स्वयम् आ गयी है। प्रतिनायक रावण का राम के साथ संघर्ष सीता-विवाह के समय से ही प्रारम्भ हो जाता है। परशुराम गुरू शिव के अपमान से क्रुध होकर नही, रावण के द्वारा भड़काकर भेजे जाते है। कैकेयी की दासी मन्थरा और कोई नही है, वह सुपर्णखा है, जो रावण के द्वारा मन्थरा-वेश में भेजी गयी है और कैकेयी द्वारा राम को वन में भिजवाकर वह अपने षडयन्त्र में सफल हो जाती है। राम के वनवास काल में माल्यवान् सीता-हरण कराता है, वही बाली को भी भड़काता है। बाली स्वयं राम से लडने आता है और मारा जाता है। बालि वध की कथा में ऐसा परिवर्तन नायक की मर्यादा बचा लेता है, अन्यथा धीरोदात्त प्रकृति के राम, धीरोद्धत प्रकृति के नायक की तरह छल से से बाली को मारें, यह 'प्रकृति विषयक' रस दोष आये बिना न रहता। परवर्ती लक्षणग्रन्थकारो ने उदाहरणो के रूप में इस नाटक के उदाहरणो को अपने-अपने ग्रन्थों में स्थान देकर इसका गौरव स्वीकार किया है।

उत्तररामचरित-भवभूति का यह सात अंको का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें रामचन्दजी का लोकोत्तर उत्तरचरित्र का वर्णन है। इसे महावीरचरित का उत्तर भाग कहा जा सकता है। इसमें- **प्रथम अंक** में की योजना कर कवि ने सीताजी के द्वारा गंगा दर्शन की इच्छा व्यक्त करायी है इधर दुर्मुख नामक गुप्तचर से प्रजा में फैले हुए लोकापवाद की सूचना राम को मिलती है। प्रजारंजन के लिए सीता-परित्याग का दृढ निश्चय कर राम सीता को गंगा दर्शन के व्याज से लक्ष्मण द्वारा वन में भिजवा देते है। सीताजी को उस समय अपने निर्वासन का पता नही रहता है। सीता-परित्याग की भूमिका कवि ने बडे कौशल से संयोजित की है। **द्वितीय अंक में** सीता परित्याग के 12 वर्ष बाद की घटनाएं चित्रित की गयी है। उसमें आत्रेयी नामक तापसी और वासन्ती नामक वनदेवी के संवाद से हमे पता चलता है कि राम अश्वमेधयज्ञ करने जा रहे है। महर्षि बाल्मिकी किसी देवता द्वारा सौपे गये दो कुशाग्रबुद्धि बालकों के लालन-पालन में निरत है। इसी अंक में राम दण्डकारण्य में आकर शुद्ध तपस्वी शम्बुक का वध करते है। **तृतीय अंक में** तमसा और मुरला इन दो नदियों के संवाद से हमे ज्ञात होता है कि मुरला गोदावरी से अगस्त्य-पत्नी लोपामुद्रा का यह सन्देश कहने जा रही है कि सीता-वियोग से अत्यन्त दुर्बल राम अगस्त्याश्रम से लौटकर पंचवटी पहुचॅने पर पूर्व वृत्तान्तों की स्मृति से व्याकुल हो उठेंगे, अतः गोदावरी उनका सार- सम्भाल करने में सर्तक रहे। वहीं तमसा के मुख से यह भी ज्ञात होता है कि वाल्मीकि के आश्रम के पास जब लक्ष्मण सीता को छोडकर चले गये और सीता को प्रसव वेदना हुई, तब वे गंगा में कूद पड़ी। जल में ही उन्हे दो पुत्र हुए, जिन्हे पृथ्वी और गंगा ने संभाला। सीता पाताल चली गयी और दूध छुटने पर दोनो बच्चो को गंगा ने वाल्मीकि के आश्रम में पहुचॉ दिया। उधर सरयू के मुख से राम के पन्चवटी में आने की संभावना सुनकर गंगाजी भी

सीता को साथ लेकर गोदावरी के पास पहुंच गयी। गंगा ने कुश और लव की बारहवीं वर्षगांठ मनाने के बहाने सीता को अदृश्य बनाकर तमसा के साथ राम की रक्षा के लिए ही पंचवटी भेज दिया। राम भी अगस्त्याश्रम से लौटकर पंचवटी में पहुंचे और सीता को सहवास-कालीन स्थानो को देखकर विरह-सन्तप्त हो मूर्च्छित हो गये। तमसा के कहने पर सीता ने अपने हाथो के स्पर्श से राम को आश्वस्त किया। वासन्ती भी राम से मिली और उसने सीता-निर्वासन के उपालम्भ से पूर्ण बातें राम से कीं। राम और वासन्ती के संवादो को सुनकर सीता के ह्दय से राम के प्रति स्थिर क्षोभ दूर हो गया। राम और सीता दोनो अलग-अलग शोकाभिभूत हो विलाप करने लगे। आश्वस्त होने के बाद राम अश्वमेध का अनुष्ठान करने के लिए अयोध्या चले गये और सीता गंगा के पास लौट गयीं। **चतुर्थ अंक में** जनक, कौसल्यादि रानियॅा, अरून्धती, वसिष्ठ आदि का आगमन बाल्मीकि आश्रम में होता है। वहीं से सब बालक लव को देखते है। सीता-पुत्र होने की संभावना से राजा जनक ने अपने सन्देह को निश्चयात्मक करने के उद्देश्य से उससे तरह-तरह की बातें की, किन्तु लव की बातों से वे अपने उद्देश्य में सफल न हो सके। इतने में अश्वमेधयज्ञ के घोड़ो को देखकर आश्रम के बटुकों को बड़ा कौतुहल हुआ। कुछ बटुक घोड़े को देखने के लिए लव को भी खींच ले गये। लव ने घोड़े को बटुकों के द्वारा पकड़वा लिया। रक्षकों के विरोध करने पर लव युद्ध के लिए उद्यत हो गया। **पंचम अंक में** यज्ञाश्व के रक्षक लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु से लव का वाद-विवाद होता है और वे परस्पर युद्ध के लिए उद्यत हो जाते है । **षष्ठ अंक** में विद्याधर-दम्पति के मुख से हमें लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है। शम्बुक को मारकर उसी युद्धस्थल में राम के आने से युद्ध रूक जाता है। कुश भी उसी समय युद्ध की सूचना पाकर वहॅा आ जाता है। कुश और लव को देखकर सीता-पुत्र की संभावना से राम के ह्रदय में उनके प्रति वात्सल्य उमड़ पड़ता है। किन्तु कुश और लव की तटस्थ बातचीत से वे इस निर्णय पर नही पहुचॅ पाते है कि ये उन्ही की सन्तान है। **सप्तम अंक** में गर्भनाटक की योजना की गयी है। उसका अभिनय देखने के लिए समस्त प्रजा, देव, असुर, पशुपक्षी, नाग, सभी स्थावर जंगम प्राणी तथा राम-लक्ष्मण भी उपस्थित थे। इसमें कुश और लव की उत्पत्ति, सीता का पाताल-प्रवेश, कुश और लव को गंगा द्वारा वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचाना आदि सभी कुछ दिखलाया गया है। सीता के पाताल-गमन से राम मूर्च्छित हो गये। तब मुख्य नाटक में गंगा और पृथिवी के साथ सीता जल से निकलकर अपने हाथों के स्पर्श से अरून्धती के आदेशानुसार राम को प्रशंसा करती हुई अरून्धती ने उपस्थित जनता के समक्ष राम से सीता को स्वीकार करने का प्रस्ताव किया। इस प्रकार राम, सीता, कुश एवं लव का सामगम हुआ। अतएव यह नाटक सुखान्त सिद्ध होता है।

भवभूति का व्यक्तित्व

यद्यपि नाटककार को अपने नाटक में प्रत्यक्ष रूप से आत्माभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नही रहती है, तथापि वह किसी न किसी रूप में अपनी कृतियों में अपने गुण, स्वभाव, विचारों तथा सिद्धान्तो को बिना अभिव्यक्त किये नहीं रहता। भवभूति की कृतियों के अध्ययन से उनके भी व्यक्तित्व का आभास हमें सुगमता से हो जाता है। भवभूति उत्कृष्ट कोटि के विद्वान् थे। इन्हे विद्वत्ता

पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी। अपनी विद्वता पर इन्हें गर्व भी था, जो भाषा पर इनके पूर्ण अधिकार को देखते हुए स्वाभाविक एवं सात्त्विक प्रतीत होता है। 'मालतीमाधव' के ये नाम केचिदिह-इत्यादि श्लोक से प्रतीत होता है कि इन्हें प्रारम्भिक जीवन में उचित सम्मान नही प्राप्त हुआ था। किन्तु 'सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता। यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।' (उत्तर.) के अनुसार कर्त्तव्य-पालन में आस्था रखने वाले महाकवि 'उत्तररामचरित' की रचना के बाद यश:प्राप्ति के साथ-साथ प्रौढ़ावस्था में कन्नौज के राजा यशोवर्मा का आश्रय भी प्राप्त हो गया था। कर्मकाण्ड-प्रवीण तथा विश्रुत मीमांसक होते हुए भी भवभूति स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती थे। इनके नाटकों में विदूषक की योजना न होने से इनके गम्भीर स्वभाव का पता लगता है। बहुत संभव है कि साहित्य क्षेत्र में बहुत दिनों तक होने वाली इनकी उपेक्षा ने, अथवा बारम्बार विधुरावस्था के इनके वर्णन से प्रतीयमान असामयिक वैधुर्य भाव ने ही इन्हें गम्भीर बना दिया हो। इनकी यह गम्भीरता हास-परिहास को भी गम्भीर बनाकर ही प्रस्तुत करती है। चित्रवीथी में लक्ष्मण द्वारा चित्रों को दिखलाते समय उर्मिला को छोड़कर आगे बढ़ने पर सीता की-वत्स! 'इयमप्यपरा का' इस उक्ति से लक्ष्मण लजा जाते है। यह परिहास अत्यन्त शिष्ट और मनोरम होते हुए भी कवि की गम्भीरता के कारण स्मिति तक ही सीमित रह जाता है। प्रस्तुत नाटक के अन्त में सीता को मिलते समय लक्ष्मण प्रणाम करते हुए कहते है-अयं निर्लज्जो लक्ष्मणः प्रणमति'। सीता आर्शीवाद देती है-वत्स' ईदृशस्त्वं चिरन्जीव।' सीता की यह युक्ति मधुर उपालम्भ के साथ ही विनोद से भी पूर्ण है, किन्तु कवि की गम्भीरता के कारण ही इसमें उच्छृखंलता की गन्ध नही है। वस्तुतः निर्मल हास का प्रस्तुतीकरण भी गम्भीरता की अपेक्षा रखता है। यही कारण है कि भवभूति हास्य के क्षेत्र में भी अन्य कवियों से अनूठे ही दिखलायी पड़ते हैं। अन्य कवि तो हास्य को उच्छृखंल बनाने के ही उद्देश्य से विदूषक की योजना करते है। अतः उसमें निर्मलता का दर्शन असम्भव है।

महाकवि भवभूति सात्त्विक प्रेम के पक्षपाती है। इसमें भी उनके ह्दय का गाम्भीर्य ही हेतु है। अतएव उसमें वासना का ज्वार नही और बाहरी कारणो की अपेक्षा भी नही है। वह तो आन्तरिक हेतु पर निर्भर है। जो उसे गहरी आत्मीयता में निमग्न कर सात्त्विक रूप प्रदान करता है।

'व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरूपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।' (उत्तर.)

भवभूति ने श्रृंगार के संभोग का भी चित्र पूर्व स्मृति के रूप में खींचा है, किन्तु वहॉ भी इनकी गम्भीरता ने कामचेष्टाओं के ओछापन को नही आने दिया है। और आत्मीयता के गहरे रंग से रंजित कर मनमोहक बना दिया है।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगाद्विरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैदोष्णो रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्। (उत्तर.)

भवभूति मानव-मन के चतुर पारखी थे। मन के अन्तर्द्वन्द्व को पकडने तथा उसे सफल अभिव्यक्ति देने में ये सिद्धहस्त थे। यहीं कारण है कि प्रस्तुत नाटक में सीता, राम, राजर्षि जनक,

कुश लव, चन्द्रकेतु, कौसल्या, वासन्ती आदि विभिन्न कोटि के मनुष्यों के मन के अन्तर्द्वन्द्व की जैसी सफल अभिव्यक्ति हुई है, विश्व के साहित्य में भी दुलर्भ है। इस बात की प्रशंसा पाश्चात्य समालोचक भी मुक्तकण्ठ से करते है। भवभूति की वेदनाव्यथित विधुरावस्था की अनुभूति की तीव्रता में उनके उल्लासमय दाम्पत्य जीवन की मधुरता ही मुख्य हेतु है। उनके आदर्श दाम्पत्य जीवन की मनोरम झॉकी उत्तररामचरित में दर्शनीय एवं स्पृह्णीय है। सत्चरित्रता, निष्ठा और मर्यादा पूर्ण जीवन जीने वाले तथा धर्म में गहरी आस्था रखने वाले भवभूति के मत में ही स्त्री भोग विलास की सामग्री नहीं, अपितु घर की लक्ष्मी तथा नेत्रों के लिए अमृतशलाका की भॉति शान्ति-प्रदायिनी है, वह जीवन सहचरी है और पवित्रता की मूर्ति है। विवाह का उद्देश्य भोग विलास नही, अपितु कर्त्तव्य-पालन, त्याग-तपस्या, प्रजातन्तु को विच्छेद से बचाना है। गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने में सन्तान का महत्व सर्वोपरि है। वह दम्पति के अन्तःकरण की आनन्दग्रन्थि ही तो है।

सर्वथा कल्याणकारी दाम्पत्य स्नेह के विषय में भवभूति की मान्यता है कि वह किसी-किसी सौभाग्यशाली को ही भाग्य से ही प्राप्त होता है। उसकी यह विशेषता है कि सुख-दुःख और सभी अवस्थाओं में एकरस रहता है। वह हृदय को अपूर्व विश्राम देता है। वृद्धावस्था में भी उसमें अनुराग की कमी नही होती। वह समय पाकर सभी प्रकार के संकोचो के समाप्त हो जाने से प्रगाढ़ एवं उत्कृष्ट प्रेम के रूप में स्थिर रहता है। डा. व्यास के शब्दों में संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि भवभूति का व्यक्तित्व संस्कृत साहित्य में जीवन की मधुरता और कटुता, अन्तःप्रकृति और बाह्मप्रकृति के कोमल और विकट, दोनो रूपों के ग्रहण करने की क्षमता रखता है। भवभूति ही वह श्रीकण्ठ है, जिन्होंने ने एक साथ चन्द्रकला की शीतल सरसता और विष की तिक्तता, दोनो को जीवन के उल्लासमय और वेदनाव्यथित, दोनो तरह के पहलुओं को सहर्ष अंगीकार किया है।

अभ्यास प्रश्न 1

1 भवभूति का वास्तविक नाम क्या था ?
2 इनके पितामह का नाम क्या था ?
3 भवभूति का जन्मस्थान कहॉ पर था ?
4 भवभूति की कितनी प्रसिद्ध रचनायें है ?
5 मालतीमाधव के लेखक कौन है ?
6 उत्तर रामचरितम में कितने अंक है ?

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न-

1 भवभूति का पैतृक नाम था ?

(क) भवभूति (ख) श्रीकण्ठ
(ग) नारद (घ) कश्यप

2 भवभूति के पिता का नाम था ?

(क) दशरथ (ख) गर्ग

(ग) नीलकण्ठ (घ) विश्वनाथ

3 भवभूति का जन्म हुआ था ?

(क) पद्मपुर नगर (ख) अयोध्या

(ग) गुजरात (घ) कुशीनगर

4 उत्तर रामचरितम् के लेखक है ?

(क) विश्वनाथ (ख) जगन्नाथ

(ग) महिमभट्ट (घ) भवभूति

5 भवभूति की विद्वता प्राप्त हुई थी ?

(क) दैवरूप से (ख) पैतृक रूप से

(ग) गुरू कृपा से (घ) शिव कृपा से

4.4 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के पश्चात् आपने जाना कि भवभूति का व्यक्तित्व क्या है। महाकवि भवभूति का व्यक्तित्व महान था, वे एक आदर्शव्यक्ति थे। महाकवि भवभूति एक महान् कर्मकाण्डी तथा विश्रुत मीमांसक होते भी स्त्री शिक्षा के महान पक्षपाती थे। महाकवि भवभूति की वेदना व्यथित विधुरावस्था की अनुभूति की तीव्रता में उनके उल्लासमय दाम्पत्य जीवन की मधुरता ही मुख्य हेतु है। उनका आदर्शजीवन दाम्पत्य जीवन की मनोरमा झॉकी उत्तररामचरित में दर्शनीय स्पृहणीय है। महाकवि भवभूति की कृतियों का भी वर्णन इस इकाई में सम्यग् रूप से किया गया है। भवभूति मन के अन्तर्द्वन्द्व को पकडने तथा उसे सफल अभिव्यक्ति देने में ये सिद्धहस्त थे। यहीं कारण है कि प्रस्तुत नाटक में सीता, राम, राजर्षि जनक, कुश लव, चन्द्रकेतु, कौसल्या, वासन्ती आदि विभिन्न कोटि के मनुष्यों के मन के अन्तर्द्वन्द्व की जैसी सफल अभिव्यक्ति हुई है, विश्व के साहित्य में भी दुलर्भ है। इस बात की प्रशंसा पाश्चात्य समालोचक भी मुक्तकण्ठ से करते है। भवभूति की वेदनाव्यथित विधुरावस्था की अनुभूति की तीव्रता में उनके उल्लासमय दाम्पत्य जीवन की मधुरता ही मुख्य हेतु है। उनके आदर्श दाम्पत्य जीवन की मनोरम झॉकी उत्तररामचरित में दर्शनीय एवं स्पृह्णीय है। सत्चरित्रता, निष्ठा और मर्यादा पूर्ण जीवन जीने वाले तथा धर्म में गहरी आस्था रखने वाले भवभूति के मत में ही स्त्री भोग विलास की सामग्री नहीं, अपितु घर की लक्ष्मी तथा नेत्रों के लिए अमृतशलाका की भॉति शान्ति-प्रदायिनी है, वह जीवन सहचरी है और पवित्रता की मूर्ति है।

4.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
रामाभ्युदय	राम का अभ्युदय
पैतृकः	पिता का

स्त्रीणां कर्ता	स्त्रियों का पति
दृश्यताम्	देखिये
द्रष्टव्यमेतत्	यह देखने योग्य है
भवेत	होना चाहिए
भवभूतेः	भवभूति का
भारती भाति	सरस्वती के समान
वज्रादपि	वज्र के समान
कठोराणि	कठोर
कुसुमादपि	फुलो से भी
मृदूनि	कोमल
भव	शंकर
भूति	सम्पत्ति

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 - उत्तर- 1 भवभूति 2- भट्टगोपाल 3- द्रविण देश 4- तीन 5 –भवभूति 6 – सात

अभ्यास प्रश्न 2 – 1. (ख) 2. (ग) 3. (क) 4. (घ) 5. (ख)

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.भवभूति और उनकी नाट्यकला, अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988

2.भवभूति ग्रन्थावली, राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

4.8 उपयोगी पुस्तकें

1.भवभूति और उनकी नाट्यकला, अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988

2.भवभूति ग्रन्थावली, राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाकवि भवभूति का जीवन परिचय लिखिए।
2. भवभूति की रचनाओं का वर्णन कीजिए।